International Journal of Advanced Academic Studies 2020; 2(4): 826-829

E-ISSN: 2706-8927
P-ISSN: 2706-8919
www.allstudyjournal.com
IJAAS 2020; 2(4): 826-829
Received: 14-03-2020
Accepted: 20-04-2020

डॉ. नीरव अडालजा
एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, डॉ. भीम राव अम्बेडकर कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

Corresponding Author:
डॉ0 अश्विनी कुमार
बेहटा, बेनीपट्टी, मधुबनी, बिहार, भारत

अस्मिताओं के भाषिक संदर्भ का भारतीय परिप्रेक्ष्य

डॉ. नीरव अडालजा

प्रारूप – भाषा अस्मिता का एक आधारभूत तत्व है। साझी संस्कृति, धर्म और स्मृतियां भी उसके सहारे अस्मिता निर्माण, संवर्धन और संवहन में समर्थ होती है। भाषा की लचीली और अचूक संप्रेषण क्षमता अस्मितापरक गतिविधियों के लिए उसे बेजोड़ माध्यम बना देती है। अस्मिता शोषण के विरुद्ध जिस संघर्ष के सहारे विकसित होती है वह भी भाषा के सहारे खड़ा होता है। औपनिवेसिक शोषण के विरुद्ध भारतीय अस्मिताओं के विकास के साथ ही भाषाओं एवं उससे संबंधित साहित्य का भी तेजी से विकास हुआ। भारत में एक भाषा आधारित अस्मिताएं भी हैं और बहु भाषिक अस्मिताएं भी। प्रायः बहुभाषिक अस्मिता एक वृहद् अस्मिता होती है जिसके भीतर की अस्मिताओं में सहचर्य के साथ ही संघर्ष की स्थितियां भी निर्मित होने की संभावना होती है। किसी भाषा का अस्मिता का तत्व बनना उसके व्याकरणिक ढाँचे या साहित्यिक श्रेष्ठता के बजाय संप्रेषणीयता पर अधिक निर्भर करती है। अस्मिता की पहचान बनने के बाद भाषा जरूर मानक स्वरूप तथा साहित्यिक श्रेष्ठता की ओर अग्रसर होती है। कालांतर में यह भाषा अस्मिता पर होने वाले शक्तिसाली सत्ता के आघातों के विरुद्ध संघर्ष का माध्यम बनकर संरक्षक की भूमिका में आ जाती है। किंतु यह स्मरण रखना आवश्यक है कि भाषा अस्मिता का प्रमुख स्तंभ है एकमात्र नहीं। आधुनिक अस्मिताओं ने भाषा के महत्व को पहचाना है तथा अस्मितागत संघर्षों के परिहार के लिए अपनी भाषा में जरूरी परिवर्तन किए हैं।

बीज शब्द– अस्मिता, मंगोलियाई अस्मिता, सांस्कृतिक कारक, चिह्नित अस्मिता, अचिह्नित अस्मिता, राष्ट्रवाद, भारतीयता, हिंदी अस्मिता, अस्मितामूलक संघर्षद्य

प्रस्तावना

अस्मिता कुछ निश्चित समानताओं के आधार पर कायम सामाजिक समुदाय की सामूहिक 'हम' की भावना है। यह भावना अभिव्यक्ति और संप्रेषण के जिन माध्यमों द्वारा व्यावहारिक रूप प्राप्त करती है उनमें भाषा सबसे प्रभावी माध्यम है। अस्मिता की आधारभूमि सामान्य तत्त्वों (बवउउवद मसमउमदजे) की उपस्थिति है। इसलिए यह भी माना जाता है कि जितनी अधिक सामान्यता होगी अस्मिता विशेष के अंतर्गत शामिल सदस्यों में उतनी ही अधिक सद्भाव, सहयोग और निकटता होगी। मंगोलियाई अस्मिता में नस्ल एक सामान्य तत्त्व है, वहीं यहूदी, मुसलिम और ईसाई जैसे सभी धर्मों में अस्मिता का सामान्य वाहक धर्म है। लातिन अमेरिका में भाषा और संस्कृति अस्मिता के सामान्य स्वरूप का प्रतिनिधित्व करते हैं। चूंकि भाषा का संस्कृति से सीधा संबंध होता है, इसलिए अस्मिता बोध में भाषिक समानता प्रायः सांस्कृतिक समानता के साथ मौजूद रहती है। सांस्कृतिक कारक भाषा के सहारे ही अस्मिताबोध के निर्माण में सहायक बनते हैं। इस तरह भाषा संस्कृति और अस्मिता का संरक्षण, संघटन और संवहन का माध्यम बन जाती है। भाषा अस्मिता का विकास और संरक्षण करने वाले सबसे कारगर औजारों में से एक है। लिपि के कुछ चिह्नों या कुछ ध्वनि प्रतीकों के सहारे अभिव्यक्ति पाने वाली भाषा आसानी से अस्मिता निर्माण संवहन या संरक्षण संबंधी उद्देश्य के लिए प्रयुक्त की जाती है। इसे अवसर और स्थितियों के अनुरूप सहजता से संशोधित, परिष्कृत या परिवर्धित किया जा सकता है। इसकी संप्रेषण क्षमता अचूक होती है। ये विशेषताएँ भाषा को अस्मिता परक गतिविधियों के लिए सबसे उपयोगी औजार बना देती है। नारों, आलेखों, संवादों, स्मारिकाओं, ज्ञापनों, चुटकुलों, साहित्यिक रचनाओं, समाचार पत्र–पत्रिकाओं, लोकगीतों आदि का रूप लेकर भाषा अस्मिता के संदेशों का प्रसार करती है।

अस्मिता का विकास अस्मितागत शोषण के विरुद्ध संघर्ष के साथ होता है। यह सर्वविदित है कि साम्राज्यवादी राष्ट्रवाद और वैश्विक पूँजीवाद के दौर में उत्पीड़ित लोगों ने संघर्ष कर अपनी जातीय अस्मिता विकसित की और अपने राष्ट्र बनाए। एक दौर था जब अस्मिता को जैविक भिन्नता से जोड़कर देखा जाता था। माना जाता था कि रंग, शारीरिक बनावट या लिंग की भिन्नता के आधार पर अस्मिताएँ निर्मित होती हैं। स्त्री, अश्वेत, यूरोपीय, भारतीय आदि अस्मिता से संबद्ध लोगों की शारीरिक भिन्नता को स्पष्ट रूप से रेखांकित किया जा सकता है। कालांतर में स्वच्छंदतावाद ने इसे जैविक की तरह भाषा से अविच्छिन्न रूप से जोड़ दिया। उसके लिए संस्कृति और भाषा अस्मिता निर्मित करती थी और आसानी से परिवर्तित नहीं होती थी। सांस्कृतिक समानता भाषागत समानता का कारण बनती थी। इसी तरह सांस्कृतिक भिन्नता भाषागत भिन्नता को जन्म देती थी।

अस्मिता का यह रूप सामान्य परिवेश में और आकादमिक जगत में भी लोकप्रिय हुआ जिसमें उसे अनुवांशिक गुणों से संबद्ध न करके सांस्कृतिक कारकों से उत्पन्न माना गया था। संस्कृति के कारकों में भाषा का स्थान प्रमुख माना गया था।

अस्मिताएँ सामान्यतः दो प्रकार की होती हैं– चिह्नित अस्मिता जो पहचान प्राप्त कर चुकी होती है और अचिह्नित अस्मिता जो पहचान प्राप्त करने के लिए संघर्ष कर रही होती है। चिह्नित अस्मिताएँ अनिवार्यतः किसी भाषा से संबद्ध होती हैं। अचिह्नित अस्मिताएँ भी पहचान बनाने के क्रम में एक भाषा या कुछ भाषाओं को अपने पहचान से जोड़ती है। भारत में यूरोपियों के आगमन तक भारतीय अस्मिता अनिर्मित थी। साम्राज्यवादी शक्तियों द्वारा किए गए राजनीतिक, आर्थिक, एवं सांस्कृतिक आघातों ने अखिल भारतीय अस्मिता निर्माण की पृष्ठभूमि तैयार कर दी। १६ वीं सदी में भारतीय नवजागरण के अग्रदूतों द्वारा अस्मिता निर्माण की प्रक्रिया शुरु हुई। हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषाओं को उसकी पहचान भाषा के रूप में चुना गया। दयानंद सरस्वती से लेकर महात्मा गाँधी के प्रयासों से कश्मीर से कन्याकुमारी तक और गुजरात से अरुणाचल प्रदेश तक हिंदी भारतीय अस्मिता की पहचान भाषा बन गई। गाँधी जी सहित भारतीय स्वतंत्रता सेनानियों ने हिंदी को आगे कर अंग्रेजी भाषा के जरिए थोपी जा रही अंग्रेजी अस्मिता की गुलाम मानसिकता को चुनौती दी।

अस्मिता परक लगाव भाषा की कविताओं, कहानियों, नाटकों, उपन्यासों, निबंधों, संस्मरणों, डायरियों, रिपोर्ताजों आदि साहित्यिक विधाओं में तो होता ही है मुहावरे और लोकोक्तियाँ कहावतें और चुटकुले भी अस्मिता और भाषा के संबंध को व्यक्त करने के लिए बहुप्रयुक्त होते हैं। मसलन 'आधी रोटी घर भली, नहीं दूर की चाह' या फिर 'दिल्ली को छोड़कर दक्कन को न जाएँगें' जैसे कहावतों और "कोटि कोटि कंठों की भाषा, जन–जन की मुखरित अभिलाषा हिंदी है पहचान हमारी हिंदी हम सबकी परिभाषा" जैसी कविताओं आदि में अपनी अस्मिता से उत्कट लगाव मिलता है।

अस्मिता का भाषा से हमेशा एक–एक का संबंध नहीं होता है। अस्मिता के कुछ वृहद रूप होते हैं जिसमें एक से अधिक भाषा के प्रयोक्ता शामिल रह सकते हैं। भारतीयता इसी तरह की अस्मिता है जिसमें पंजाबी, हिंदू, नागा, दलित, स्त्री आदि अस्मिताएँ शामिल हैं। इसी तरह एक ही भाषिक अस्मिता के अंतर्गत कई अन्य लघु अस्मिताएँ मौजूद हो सकती हैं। भाषाई आधार पर गठित अस्मिताओं से इतर आधारों मसलन राष्ट्र, धर्म, लिंग, नस्ल आदि के आधार पर निर्मित अस्मिताओं में प्रायः एक से अधिक भाषिक अस्मिताएँ शामिल रहती हैं। इसके बावजूद किसी एक भाषा का विकास इस तरह होता है कि वह उस अस्मिता की पहचान से जुड़ जाती है। वृहद अस्मिता की भाषा के विकास को रामविलास शर्मा की जातीय भाषा के विकास की अवधारणा के सहारे समझा जा सकता है। वे लिखते हैं– "जातीय भाषाएँ किसी आर्थिक व्यवस्था का सांस्कृतिक प्रतिबिम्ब नहीं हैं। उनके भाषा¬ तत्त्वों का निर्माण आर्थिक आधार पर नहीं होता। बोलियों या किन्हीं लघुजातियों की भाषाओं के रूप में उनका अस्तित्व पहले भी रहता है, किंतु महाजातियों की भाषा के रूप में उसका अस्तित्व पहले नहीं होता। उदाहरण के लिए दिल्ली या आगरे की जो बोली हिंदी¬–उर्दू के रूप में विकसित हुई, वह पहले एक छोटे से क्षेत्र में सीमित थी। जब वह अवध, बुंदेलखंड, भोजपुरी प्रदेशों की सम्मिलित भाषा बनी, तब उसका क्षेत्र व्यापक हो गया, वह हमारी जातीय भाषा बनी।" अनेक भाषाओं में से कौन सी भाषा जातीय भाषा बनेगी यह भाषा की व्याकरणिक या साहित्यिक स्तर से तय नहीं होता है। यह बहुत कुछ बाजार, सत्ता और जनता से भाषा के संबंध द्वारा निश्चित होता है। साम्राज्यवाद से संघर्ष के दौरान हिंदी की अनेक बोलियों में से खड़ी बोली विकसित और परिष्कृत होकर भारतीयता की अस्मिता से जुड़ गई। बहुत से विद्वान इसका कोई विशुद्ध भाषागत कारण बताने की चेष्टा करते हैं। खड़ीबोली में कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं जो ब्रज, अवधी आदि में नहीं थीं इसलिए उसने ब्रज भाषा को अपदस्थ कर दिया। इसके विरुद्ध ब्रजभाषा प्रेमी यह तर्क देते हैं कि ब्रजभाषा के से कवि खड़ीबोली में पैदा ही नहीं हुए। खड़ीबोली ने ब्रजभाषा का हक छीन लिया है। राष्ट्रीय, धार्मिक, सांस्कृतिक या जैविक आधारों पर निर्मित होने वाली वृहद अस्मिताओं के विकास के संदर्भ में इस प्रक्रिया को समझने पर सामाजिक विकास क्रम में अनेक में से किसी एक बोली का अस्मिता का गठन या प्रसार करने वाली भाषा के रूप में विकास स्वाभाविक और अनिवार्य घटना है। रूस, ब्रिटेन, फ्रांस आदि अस्मिताओं से वहाँ की भाषा का जुड़ाव इसी ऐतिहासिक अनिवार्यता का परिणाम था।

भाषा और अस्मिता का जुड़ाव एक सामाजिक प्रक्रिया का परिणाम है। यह प्रक्रिया व्याकरण के नियमों के अनुसार घटित नहीं होती। व्याकरणिक विशेषता या साहित्यिक श्रेष्ठता के बजाय भाषा और अस्मिता के योग में संप्रेषणीयता की भूमिका अधिक महत्वपूर्ण होती है। जिस भाषा को अस्मिता की पहचान बननी होती है उसके लिए जरूरी है कि उस अस्मिता से संबद्ध व्यक्तियों में छोटे से बड़े तक, तथा बच्चों से बूढ़े तक सब लोग उस भाषा के जरिए दूसरे की बात को स्वाभाविक रीति से अच्छी तरह समझ सकें। जिसे प्रयोग करने के लिए किसी को व्यर्थ कृत्रिम माध्यम का सहारा न लेना पड़े। आवश्यक नहीं की यह आधिकारिक भाषा भी हो। आधिकारिक भाषा या राजभाषा होने की कसौटी अस्मिता भाषा की कसौटी से अलग है। यही कारण है कि कभी कभी एक ही अस्मिता की आधिकारिक भाषा और पहचान भाषा अलग होती है। उदाहरण के लिए स्वाधीनता संघर्ष के दौरान भारत और उसके अंतर्गत शामिल विभिन्न प्रांतों की आधिकारिक भाषा अंग्रेजी थी जबकि इन अस्मिताओं की भाषाएँ हिंदी, बंगाली, मराठी, तमिल आदि विभिन्न आधुनिक भारतीय भाषाएँ थीं। स्तालिन ने वृहद अस्मिता 'जाति' के लिए एक सामान्य भाषा को आवश्यक घटक माना है। वे भी सामान्य भाषा को आधिकारिक भाषा से अलग करते हैं और उसे लोगों द्वारा आम तौर पर प्रयोग की जाने वाली भाषा के रूप में रेखांकित करते हैं।

अस्मिता से जुड़ने के बाद भाषा के स्वरूप में काफी परिवर्तन होता है। भाषा अस्मिता का प्रमुख चिह्न होती है, इसलिए अस्मिता निर्माण तथा भाषा का गठन और विकास घनिष्ठ रूप से संबद्ध हो जाता है। यह अकारण नहीं है कि १६वीं सदी भारत में राष्ट्रीय और सांस्कृतिक अस्मिताओं के गठन और विकास का दौर है और उन अस्मिताओं से संबद्ध भाषा और साहित्य के पुनर्निर्माण और विकास का भी। बाँगला अस्मिता के उठान का और बँगला भाषा में आनन्द मठ से लेकर गीतांजलि तक की रचना का काल एक ही है। यह संयोग मात्र नहीं है कि अस्मितामूलक दलित आंदोलन का उभार ज्योतिबा फूले और भीमराव अंबेडकर आदि के नेतृत्व में महाराष्ट्र से शुरु हुआ और दलित लेखन का नेतृत्व भी महाराष्ट्र ने ही किया। १६ वीं सदी के उत्तरार्ध में हिंदी प्रदेश भारतीय और हिंदू–मुसलिम अस्मिता से जुड़ रहा था और उसी समय हिंदी तथा उर्दू भाषा–साहित्य का आधुनिकीकरण हो रहा था।

अस्मिता का जन्म अस्मितागत शोषण के विरुद्ध संघर्ष के साथ होता है। साम्राज्यवादी राष्ट्रवाद और वैश्विक पूँजीवाद के दौर में उत्पीड़ित लोगों ने अस्मितागत संघर्ष कर अपने राष्ट्र बनाए। कहना न होगा कि साम्राज्यवादी शक्तियों के खिलाफ अस्मिता मूलक संघर्ष में भाषा की निर्णायक भूमिका होती है। साम्राज्यवादी ताकतें निरंतर ऐसी अस्मिताओं के विकास को अवरुद्ध करने की कोशिश करती हैं। यह संयोग मात्र नहीं है कि भारत में साम्राज्यवाद के पहले शिकार बने और तत्कालीन गढ़ रहे बंगाल से ही अस्मिता निर्माण की प्रक्रिया शुरु हुई और बंगाली भाषा की

इसमें अग्रणी भूमिका रही। साथ ही यह भी स्वाभाविक ही था कि साम्राज्यवादी ताकत द्वारा अस्मिताओं को तोड़ने की सबसे गंभीर कोशिश भी १९०५ में बंग–भंग के रूप में बंगाल से ही शुरु हुई। साम्राज्यवादी आघातों से मुक्ति के लिए निर्मित हुई बंगाली अस्मिता इस आघात से नष्ट होने के बजाय और सशक्त हो गई। इसके खिलाफ हुए अखिल भारतीय आंदोलनों ने बंगाली अस्मिता को हमेशा के लिए भारतीय अस्मिता से संपृक्त कर दिया। भारतीय अस्मिता के निर्माण में 'बंग–भंग' के महत्व को रेखांकित करते हुए गांधी जी ने लिखा– "जब बंगाल का विभाजन हुआ उस दिन से अंग्रेजी राज के भी टुकड़े हुए। बंग¬भंग से जो धक्का अंग्रेजी हुकूमत को लगा, वैसा और किसी काम से नहीं लगा। जागा हुआ हिंद फिर सो जाय–वह नामुमकिन है। बंग¬भंग को रद करने की माँग स्वराज्य माँग के बराबर है।" गांधीजी ने राजनीति में आकर कांग्रेस को जनता और गाँवों से जोड़ा बल्कि उसकी भाषा को भी अंग्रेजी के बंधन से मुक्ति दिलाई। वे आजीवन भारत की राजभाषा को अंग्रेजी से मुक्त करने का प्रयास करते रहे। उनकी स्पष्ट धारणा थी कि भारतीय अस्मिता की उपलब्धि के रूप में निर्मित हुए भारत संघ की राजभाषा अंग्रेजी नहीं बल्कि हिंदी सहित अन्य भारतीय भाषाएँ ही हो सकती हैं।

भाषा के साथ आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन तथा ऐतिहासिक परंपरा अस्मिता के निर्माण और विकास के महत्त्वपूर्ण कारक हैं। जीवन स्थितियों और परंपराओं का अस्मिता पर प्रभाव अभिव्यक्ति के सभी माध्यमों द्वारा पड़ता है। भाषा अपनी प्रयोग की सहजता और लचीलेपन के कारण सर्वाधिक प्रभावी माध्यम साबित होती है। पूँजीवादी या समाजवादी आर्थिक संबंध भाषा के जरिए अस्मिताओं के गठन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। पूँजीवाद के विकास के साथ बाजार और प्रकाशन तंत्र विकसित होता है। छापाखाने के सहारे भाषा की अस्मिता निर्माण, संरक्षण या सुदृढ़िकरण संबंधी गतिविधियाँ अधिक व्यापक हो जाती हैं। व्यापकता के साथ भाषा का प्रभाव भी बढ़ जाता है।

भाषा अस्मिता के निर्माण के साथ उसके संरक्षण में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। जब कोई ताकतवर सत्ता किसी अस्मिता को नष्ट करने या विकसित होने से रोकने की चेष्टा करती है तब भाषा उस सत्ता का प्रतिरोध करती है। वह संस्कृति और इतिहास के उन बिखरे हुए तत्त्वों को विलुप्त होने से बचाती है जो किसी अस्मिता के चिह्न होते हैं।

हमें यह हमेशा ध्यान रखना चाहिए कि भाषा अस्मिता का प्रमुख स्तंभ है, एकमात्र स्तंभ नहीं। इसलिए एक ही भाषा एक से अधिक पृथक अस्मिता की पहचान बन सकती है। एक ही भाषा को चिह्न मानने वाली अस्मिताएँ परस्पर मित्र ही नहीं होती हैं बल्कि कई बार विरोधी भी होती हैं। जर्मनी और ऑस्ट्रिया की भाषा समान है। दोनों देशों की सीमाएँ भी जुड़ी हुई हैं। किंतु आस्ट्रिया का इतिहास, राजनीतिक जीवन और सांस्कृतिक विकास जर्मनी से भिन्न और अनेक स्तरों पर विरोधी रूप में हुआ है। इसलिए भाषा की एकता के बावजूद ऑस्ट्रियाई अस्मिता जर्मन अस्मिता से पृथक रही है। डेनमार्क, नार्वे, स्वीडन और हॉलैंड की भाषाएँ जर्मन से वैसे ही मिलती हैं जैसे रूसी से बेलारुसी और उक्रैनी। किंतु बेलारूस और युक्रेन जहाँ सोवियत संघ का अंग बन गए थे वहीं डेनमार्क आदि देश जर्मनी से पृथक और स्वतंत्र बने रहे। भाषा की समानता के बावजूद अस्मिता के अन्य चिह्न– संस्कृति, आर्थिक जीवन आवासभूमि, ऐतिहासिक परंपरा आदि पृथक रहने पर पृथक अस्मिता निर्मित होती है। अस्मिता के अन्य चिह्नों की समानता और साथ रहने की आकांक्षा के आधार पर अनेक भाषा का प्रयोग करने वाली अस्मिता निर्मित होती है। भारतीयता ऐसी ही अस्मिता है जिसमें भारतीय संविधान द्वारा ८वीं अनुसूची में शामिल किए गए २२ भाषाओं के अलावा सैंकड़ों भाषाएँ और बोलियाँ प्रयुक्त होती हैं। स्विट्जरलैंड बहुभाषी अस्मिता का एक उत्कृष्ट उदाहरण है जिसने अपनी सामाजिक राजनीतिक व्यवस्था द्वारा बहुभाषी अस्मिताओं और राष्ट्रीय अस्मिता के मूल्यों को एक साथ संजोए रखा है। स्विट्जरलैंड में फ्रांसीसी, जर्मन, और इतालवी बोलने वाली तीन मुख्य भाषिक अस्मिताएँ हैं। तीनों भाषाओं में से किसी एक का वर्चस्व नहीं है। तीनों ही राजभाषा के रूप में मान्य और प्रयुक्त हैं। यहाँ तीनों भाषा अस्मिताएँ बनी हुई है। किंतु यह स्विस अस्मिता के मार्ग की बाधक नहीं बनी हैं। स्विट्जरलैंड के सभी निवासी अपने को स्विस अस्मिता का अनिवार्य अंग समझते हैं।

अस्मिता बोध हम के साथ ही अन्य की भावना का भी पोषण करता है। हम के अंतर्गत शामिल व्यक्तियों में पारस्परिक निकटता, सहयोग, सद्भाव और विश्वास पैदा होता है। अन्य के प्रति प्रायः संदेह और सतर्कता बरती जाती है। भाषा हम और अन्य के लगाव और अलगाव के भावों का एक साथ वहन करती है। वह हम और अन्यों में अंतर को कई तरीके से व्यक्त करती है। वह अन्य अस्मिताओं से तुलना कर स्वयं की श्रेष्ठता साबित करती है। इकबाल हिंदुस्तानी अस्मिता को सारे जहाँ से अच्छा बताते हुए लिखते हैं– "युनान मिश्र रोमां सब मिट गए जहाँ से। बाकी मगर है लेकिन नामो निशां हमारा।" बाल्मीकि के राम स्वर्णपुरी में रहकर भी अपनी अस्मिता से दूरी अनुभव करते हैं– "अपि स्वर्णमयी लङ्का न मे लक्ष्मण रोचते। जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी" भाषा में अस्मिता के प्रति लगाव और श्रेष्ठताबोध अन्य अस्मिताओं के प्रति घृणा या उपेक्षा के रूप में भी प्रकट होता है। "देशन में भारत भलो, हिन्दी भाषन माहिं जातिन में हिन्दू भलो, और भली कुछ नाहिं।" जैसे भाव अन्य अस्मिताओं से संघर्ष की स्थिति पैदा करते हैं। संघर्ष की स्थिति अविवेकपूर्ण रवैए से जुड़कर अस्मितागत हिंसा पैदा करती है। अमर्त्य सेन ने 'अस्मिता और हिंसा' शीर्षक पुस्तक में अस्मितापरक हिंसा पर विचार करते हुए लिखा है कि अस्मितागत हिंसा के दौर में सामान्य समझ भुला दिया जाता है।

श्रेष्ठताबोध से युक्त अस्मिताएँ जब अपनी भाषा के सहारे अपनी उतकृष्ठता के साथ ही अन्यों की तुच्छता का उल्लेख करने लगती हैं तब भाषाएँ विभिन्न अस्मिताओं के टकराव का माध्यम बन जाती हैं। वास्तव में विभिन्न अस्मिताएँ एक वरीयताक्रम में व्यवस्थित होती हैं। वरीयताक्रम में ऊपर रखी गई अस्मिताएँ सामाजिक दृष्टि से लाभप्रद स्थिति में होती हैं। साम्राज्यवादी दासता से जकड़े देशों की अस्मिताओं की भाषा आज भी वरीयताक्रम में साम्राज्यवादी सत्ता की भाषा से कमतर स्थिति में रखी जाती हैं। ऐसा औपनिवेशिक मुक्ती पा चुके देशों की राष्ट्रीय अस्मिता से साम्राज्यवादी देशों की भाषा के जुड़ाव के बिना भी किया जाता है। एशिया, अफ्रीका और अमेरिका के ऐसे देशों की संख्या सैंकड़ों में है जहाँ स्वाधीनता के बाद भी साम्राज्यवादी भाषा का ही वर्चस्व है और वह राज–काज की भाषा बनी हुई है। भारत और उसके पड़ोसी देश भी इसका अपवाद नहीं हैं। यह स्थिति एक राष्ट्रीय अस्मिता के भीतर कई विरोधी अस्मिताओं को जन्म देती है और अस्मितागत अंतर्विरोध का संकेत करती है। अस्मितागत विभेद इस तथ्य को रेखांकित करता है कि भाषाई प्रतिरोध और संघर्ष की संभावना बनी हुई है। भारत में कभी कभार उठ खड़ा होने वाले भाषिक और प्रादेशिक अस्मितामूलक संघर्ष को अस्मितागत श्रेणिबद्धता के विरुद्ध संघर्ष के रूप में भी देखा जा सकता है।

आधुनिक समय की उभरती अस्मिताओं ने भाषिक पक्ष की ओर विशेष ध्यान दिया है। इसलिए अकारण नहीं है कि नस्लीयता, जातीयता, लैंगिकता, यौनिकता, विकलांगता आदि आधुनिक समय की उभरती अस्मिताओं ने परंपरागत भाषाओं के परिष्कार पर जोर दिया है। परंपरागत भाषा के अनेक पक्षों की आलोचना कर उन्होंने नए शब्द आरोपित कर तथा कुछ शब्दों को प्रतिबंधित कर अपनी अस्मिता के उपयुक्त बनाया है। सत्ता और समाज दोनों की

हिस्सेदारी से चलने वाले ऐसे भाषिक परिष्कार अस्मिता मूलक चेतना के विकास के साथ निरंतर होते रहे हैं। महात्मा गाँधी ने अछूत शब्द के बजाय हरिजन शब्द के प्रयोग पर जोर दिया। हरिजन कही गई जातियों के लोगों ने इसके बजाय दलित शब्द के प्रयोग पर जोर दिया। ऐसी कोशिशें न एक भाषा तक सीमित है न ही किसी खास समुदाय तक। अंग्रेजी भाषा में अमेरिकी राष्ट्रीय लोकतांत्रिक समिति (US Democratic National Committee) ने 1980 ई. के दशक के आरंभ में 'डिफरेंटली एबल' शब्द का निर्माण हैंडीकैप्ड और डिसेबल की तुलना में एक और अधिक कूटनीतिक रूप से सही पारिभाषिक पद के रूप में किया था। इन विशिष्ट प्रयोगों के अलावा सामान्य प्रयोगों में भी भाषा अस्मिता बोध से संचालित रहती है और अस्मिता को प्रतिबिंबित करती है। जब सामाजिक अस्मिताएँ सक्रिय भूमिका में नहीं होती हैं तो भी जैविक या लैंगिक अस्मिताएँ भाषिक संदर्भ में सक्रिय रहती हैं। बहुत समय तक स्त्री और पुरुष अस्मिताओं की भाषा को विरोधी माना गया, इसलिए लेखन शैली में उनकी अलग पहचान की भी अवधारणा सामने आई। अंतरलैंगिक अलगाव की पहचान भाषा के अंतरलैंगिक प्रयोगों और उसके अलगावों में भी चिह्नित की जा सकती है।

अस्मिता और भाषा के पारस्परिक संबंध को एक उपयोगी उपकरण की तरह देखा जा सकता है। इसके सहारे अस्मिताओं में समन्वय की भूमिका भी बनती है और संघर्ष की भूमि भी। साम्राज्यवादी और आर्थिक हितों के कारण जब अस्मिताएँ टकराती हैं और भाषा को उसका माध्यम बनाती हैं तो भाषा की विनाशक शक्ति प्रयोग में लाई जाती है। कभी उत्पीड़ित अस्मिताएँ नष्ट हो जाती हैं तो बहुत बार उत्पीड़क समाज। किंतु जब भाषा को तुच्छ राजनीतिक स्वार्थों की सिद्धि के लिए अस्मितामूलक संघर्ष में खींच लिया जाता है तो उसके नकारात्मक परिणाम सामने आते हैं। भारत का २०वीं सदी का इतिहास भाषा और अस्मिता के संबंध के इन विविध पहलुओं का भी दस्तावेज है।

सन्दर्भ सूची –

1. Sen Amartya. Identity and Violence, OÛford University Press 2005.
2. Stalin Josef. MarÛism and the National and Colonial question, Kanishka publishing house 1991.
3. रामविलास शर्मा, भारतीय संस्कृति और हिंदी प्रदेश, किताबघर प्रकाशन, वर्ष 1999
4. मोहनदास करमचंद गाँधी, हिंद स्वराज, अनुवादक– अमृतलाल ठाकुरदास नानावटी, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, वर्ष 2001
5. थ्योंगो, न्गुगी वा, भाषा संस्कृति और राष्ट्रीय अस्मिता, अनुवादक– आनंदस्वरूप वर्मा, सारांश प्रकाशन, वर्ष 1997